श्री रामजी का सेना सहित समुद्र पार उतरना, सुबेल पर्वत पर निवास, रावण की व्याकुलता

दोहा :

*** सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं। अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥4॥

भावार्थ:-

सेतुबन्ध पर बड़ी भीड़ हो गई, इससे कुछ वानर आकाश मार्ग से उड़ने लगे और दूसरे (कितने ही) जलचर जीवों पर चढ़-चढ़कर पार जा रहे हैं॥4॥

चौपाई :

*** अस कौतुक बिलोकि द्वौ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई॥ सेन सहित उतरे रघुबीरा।कहि न जाइ कपि जूथप भीरा॥1॥

भावार्थ:-

कृपालु रघुनाथजी (तथा लक्ष्मणजी) दोनों भाई ऐसा कौतुक देखकर हँसते हुए चले। श्रीरघुवीर सेना सहित समुद्र के पार हो गए। वानरों और उनके सेनापतियों की भीड़ कही नहीं जा सकती॥1॥

*** सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा॥ खाहु जाइ फल मूल सुहाए। सुनत भालू कपि जहँ तहँ धाए॥2॥

भावार्थ:-

प्रभु ने समुद्र के पार डेरा डाला और सब वानरों को आज्ञा दी कि तुम जाकर सुंदरफल-मूल खाओ। यह सुनते ही रीछ-वानर जहाँ-तहाँ दौड़ पड़े॥2॥

*** सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी॥ खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सन्मुख सिखर चलावहिं॥3॥

भावार्थ:-

श्री रामजी के हित (सेवा) के लिए सब वृक्ष ऋतु-कुऋतु- समय की गति को छोड़कर फल उठे। वानर-भालू मीठे फल खा रहे हैं, वृक्षों को हिला रहे हैं और पर्वतों के शिखरों को लंका की ओर फेंक रहे हैं॥3॥

*** जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं॥ दसनन्हि काटि नासिका काना। कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना॥4॥

भावार्थ:-

घूमते-घूमते जहाँ कहीं किसी राक्षस को पा जाते हैं तो सब उसे घेरकर खूब नाच नचातेहैं और दाँतों से उसके नाक-कान काटकर, प्रभु का सुयश कहकर (अथवा कहलाकर) तब उसे जाने देते हैं॥4॥

*** जिन्ह कर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहि कही सब बाता॥ सुनत श्रवन बारिधि बंधाना।

दस मुख बोलि उठा अकुलाना॥5॥
भावार्थ:-
जिन राक्षसों के नाक और कान काट डाले गए, उन्होंने रावण से सब समाचार कहा। समुद्र (पर सेतु) का बाँधा जाना कानों से सुनते ही रावण घबड़ाकर दसों मुखों से बोल उठा॥5॥

रावण को मन्दोदरी का समझाना, रावण-प्रहस्त संवाद

दोहा :
*** बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥5॥
भावार्थ:-
वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीश को क्या सचमुच ही बाँध लिया?॥5॥
चौपाई :
*** निज बिकलता बिचारि बहोरी॥ बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी॥ मंदोदरीं सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो॥1॥
भावार्थ:-
फिर अपनी व्याकुलता को समझकर (ऊपर से) हँसता हुआ, भय को भुलाकर, रावण महल को गया। (जब) मंदोदरी ने सुना कि प्रभु श्री रामजी आ गए हैं और उन्होंने खेल में ही समुद्र को बँधवा लिया है,॥1॥
*** कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी॥ चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥2॥
भावार्थ:-
(तब) वह हाथ पकड़कर, पति को अपने महल में लाकर परम मनोहर वाणी बोली। चरणों में सिर नवाकर उसने अपना आँचल पसारा और कहा- हे प्रियतम! क्रोध त्याग कर मेरा वचन सुनिए॥2॥
*** नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों॥ तुम्हहि रघुपतिहि अंतरकैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥3॥
भावार्थ:-
हे नाथ! वैर उसी के साथ करना चाहिए, जिससे बुद्धि और बल के द्वारा जीत सकें। आप में और श्री रघुनाथजी में निश्चय ही कैसा अंतर है, जैसा जुगनू और सूर्य में!॥3॥
*** अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे॥ जेहिं बलि बाँधि सहस भुजमारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥4॥
भावार्थ:-

जिन्होंने (विष्णु रूप से) अत्यन्त बलवान् मधु और कैटभ (दैत्य) मारे और (वराह और नृसिंह रूप से) महान् शूरवीर दिति के पुत्रों (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) का संहार किया, जिन्होंने (वामन रूप से) बलि को बाँधा और (परशुराम रूप से) सहस्रबाहु को मारा, वे ही (भगवान्) पृथ्वी का भार हरण करने के लिए (रामरूप में) अवतीर्ण (प्रकट) हुए हैं॥4॥

*** तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा॥5॥

भावार्थ:-

हे नाथ! उनका विरोध न कीजिए, जिनके हाथ में काल, कर्म और जीव सभी हैं॥5॥

दोहा :

*** रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ। सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ॥6॥

भावार्थ:-

(श्री रामजी) के चरण कमलों में सिर नवाकर (उनकी शरण में जाकर) उनको जानकीजी सौंप दीजिए और आप पुत्र को राज्य देकर वन में जाकर श्री रघुनाथजी का भजन कीजिए॥6॥

चौपाई : नाथ दीनदयाल रघुराई। बाघउ सनमुख गएँ न खाई॥ चाहिअ करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते॥1॥

भावार्थ:-

हे नाथ! श्री रघुनाथजी तो दीनों पर दया करने वाले हैं। सम्मुख (शरण) जाने पर तो बाघ भी नहीं खाता। आपको जो कुछ करना चाहिए था, वह सब आप कर चुके। आपने देवता, राक्षस तथा चर-अचर सभी को जीत लिया॥1॥

*** संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेंपन जाइहि नृप कानन॥ तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता॥2॥

भावार्थ:-

हे दशमुख! संतजन ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन (बुढ़ापे) में राजा को वन में चला जाना चाहिए। हे स्वामी! वहाँ (वन में) आप उनका भजन कीजिए जो सृष्टि के रचने वाले, पालने वाले और संहार करने वाले हैं॥2॥

*** सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥ मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी॥3॥

भावार्थ:-

हे नाथ! आप विषयों की सारी ममता छोड़कर उन्हीं शरणागत पर प्रेम करने वाले भगवान् का भजन कीजिए। जिनके लिए श्रेष्ठ मुनि साधन करते हैं और राजा राज्य छोड़कर वैरागी हो जाते हैं-॥3॥

*** सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया॥ जौं पिय मानहु मोर सिखावन।

सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन॥4॥

भावार्थ:-

वही कोसलाधीश श्री रघुनाथजी आप पर दया करने आए हैं। हे प्रियतम! यदि आप मेरी सीख मान लेंगे, तो आपका अत्यंत पवित्र और सुंदर यश तीनों लोकों में फैल जाएगा॥4॥

दोहा :

*** अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात। नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात॥7॥

भावार्थ:-

ऐसा कहकर, नेत्रों में (करुणा का) जल भरकर और पति के चरण पकड़कर, काँपते हुए शरीर से मंदोदरी ने कहा- हे नाथ! श्री रघुनाथजी का भजन कीजिए, जिससे मेरा सुहाग अचल हो जाए॥7॥

चौपाई :

*** तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई॥ सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना॥1॥

भावार्थ:-

तब रावण ने मंदोदरी को उठाया और वह दुष्ट उससे अपनी प्रभुता कहने लगा- हे प्रिये! सुन, तूने व्यर्थ ही भय मान रखा है। बता तो जगत् में मेरे समान योद्धा है कौन?॥1॥

*** बरुन कुबेर पवन जम काला। भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला॥ देव दनुज नर सब बस मोरें। कवन हेतु उपजा भय तोरें॥2॥

भावार्थ:-

वरुण, कुबेर, पवन, यमराज आदि सभी दिक्पालों को तथा काल को भी मैंने अपनी भुजाओं के बल से जीत रखा है। देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरे वश में हैं। फिर तुझको यह भय किस कारण उत्पन्न हो गया?॥2॥

*** नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई। सभाँ बहोरि बैठ सो जाई॥ मंदोदरीं हृदयँ अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना॥3॥

भावार्थ:-

मंदोदरी ने उसे बहुत तरह से समझाकर कहा (किन्तु रावण ने उसकी एक भी बात न सुनी) और वह फिर सभा में जाकर बैठ गया। मंदोदरी ने हृदय में ऐसा जान लिया कि काल के वश होने से पति को अभिमान हो गया है॥3॥

*** सभाँ आइ मंत्रिन्ह तेहिं बूझा। करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा॥ कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु पूछहु काहा॥4॥

भावार्थ:-

सभा में आकर उसने मंत्रियों से पूछा कि शत्रु के साथ किस प्रकार से युद्ध करना होगा? मंत्री

कहने लगे- हे राक्षसों के नाथ! हे प्रभु! सुनिए, आप बार-बार क्या पूछते हैं?॥4॥

*** कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥5॥

भावार्थ:-

कहिए तो (ऐसा) कौन-सा बड़ा भय है, जिसका विचार किया जाए? (भय की बात ही क्या है?) मनुष्य और वानर-भालू तो हमारे भोजन (की सामग्री) हैं॥

दोहा :

*** सब के बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि। नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्हमति अति थोरि॥8॥

भावार्थ:-

कानों से सबके वचन सुनकर (रावण का पुत्र) प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा- हे प्रभु! नीति के विरुद्ध कुछ भी नहीं करना चाहिए, मन्त्रियों में बहुत ही थोड़ी बुद्धि है॥8॥

*** कहहिं सचिव सठ ठकुर सोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती॥ बारिधि नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सबु गावा॥1॥

भावार्थ:-

ये सभी मूर्ख (खुशामदी) मन्त्र ठकुरसुहाती (मुँहदेखी) कह रहे हैं। हे नाथ! इस प्रकार की बातों से पूरा नहीं पड़ेगा। एक ही बंदर समुद्र लाँघकर आया था। उसका चरित्र सब लोग अब भी मन-ही-मन गाया करते हैं (स्मरण किया करते हैं) ॥1॥

*** छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू॥ सुनत नीक आगें दुख पावा। सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा॥2॥

भावार्थ:-

उस समय तुम लोगों में से किसी को भूख न थी? (बंदर तो तुम्हारा भोजन ही हैं, फिर) नगर जलाते समय उसे पकड़कर क्यों नहीं खा लिया? इन मन्त्रियों ने स्वामी (आप) को ऐसी सम्मति सुनायी है जो सुनने में अच्छी है पर जिससे आगे चलकर दुःख पाना होगा॥2॥

*** जेहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥ सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥3॥

भावार्थ:-

जिसने खेल-ही-खेल में समुद्र बँधा लिया और जो सेना सहित सुबेल पर्वत पर आ उतरा है। हे भाई! कहो वह मनुष्य है, जिसे कहते हो कि हम खा लेंगे? सब गाल फुला-फुलाकर (पागलों की तरह) वचन कह रहे हैं!॥3॥

*** तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर। प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥4॥

भावार्थ:-

हे तात! मेरे वचनों को बहुत आदर से (बड़े गौर से) सुनिए। मुझे मन में कायर न समझ लीजिएगा। जगत् में ऐसे मनुष्य झुंड-के-झुंड (बहुत अधिक) हैं, जो प्यारी (मुँह पर मीठी लगने वाली) बात ही सुनते और कहते हैं॥4॥

*** बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥ प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती॥5॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! सुनने में कठोर परन्तु (परिणाम में) परम हितकारी वचन जो सुनते और कहते हैं, वे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं। नीति सुनिये (उसके अनुसार) पहले दूत भेजिये, और (फिर) सीता को देकर श्रीरामजी से प्रीति (मेल) कर लीजिये॥5॥

दोहा :

*** नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौ न बढ़ाइअ रारि। नाहिं त सन्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि॥9॥

भावार्थ:-

यदि वे स्त्री पाकर लौट जाएँ, तब तो (व्यर्थ) झगड़ा न बढ़ाइये। नहीं तो (यदि न फिरें तो) हे तात! सम्मुख युद्धभूमि में उनसे हठपूर्वक (डटकर) मार-काट कीजिए॥9॥

*** यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा॥ सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई॥1॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! यदि आप मेरी यह सम्मति मानेंगे, तो जगत् में दोनों ही प्रकार से आपका सुयश होगा। रावण ने गुस्से में भरकर पुत्र से कहा- अरे मूर्ख! तुझे ऐसी बुद्धि किसने सिखायी?॥1॥

*** अबहीं ते उर संसय होई। बेनुमूल सुत भयहु घमोई॥ सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा॥2॥

भावार्थ:-

अभी से हृदय में सन्देह (भय) हो रहा है? हे पुत्र! तू तो बाँस की जड़ में घमोई हुआ (तू मेरे वंश के अनुकूल या अनुरूप नहीं हुआ)। पिता की अत्यन्त घोर और कठोर वाणी सुनकर प्रहस्त ये कड़े वचन कहता हुआ घर को चला गया॥2॥

*** हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिबस कहुँ भेषज जैसें॥ संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा॥3॥

भावार्थ:-

हित की सलाह आपको कैसे नहीं लगती (आप पर कैसे असर नहीं करती), जैसे मृत्यु के वश हुए (रोगी) को दवा नहीं लगती। संध्या का समय जानकर रावण अपनी बीसों भुजाओं को देखता हुआ महल को चला॥3॥

*** लंका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा॥ बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन। लागे किंनर गुन गन गावन॥4॥

भावार्थ:-

लंका की चोटी पर एक अत्यन्त विचित्र महल था। वहाँ नाच-गान का अखाड़ा जमता था। रावण उस महल में जाकर बैठ गया। किन्नर उसके गुण समूहों को गाने लगे॥4॥

*** बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना॥5॥

भावार्थ:-

ताल (करताल), पखावज (मृदंग) और बीणा बज रहे हैं। नृत्य में प्रवीण अप्सराएँ नाच रही हैं॥5॥

दोहा :

*** सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास। परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास॥10॥

भावार्थ:-

वह निरन्तर सैकड़ों इन्द्रों के समान भोग-विलास करता रहता है। यद्यपि (श्रीरामजी-सरीखा) अत्यन्त प्रबल शत्रु सिर पर है, फिर भी उसको न तो चिन्ता है और न डर ही है॥10॥